"दलितों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में माननीय कांशीराम का योगदान"

5

दलीप सिंह♣
हुकम सिंह♣♣

सारांश

1980 में दलित आंदोलन के एक नए नायक के रूप में कांशीराम का उदय हुआ। उन्होंने 1978 तक के अंतिम महीने में बामसेफ (बैकवर्ड एण्ड मॉइनोरिटी कम्युनिटीज इम्पलाईज फेडरेशन) की स्थापना की, जो 1980 तक दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदाय के कर्मचारियों का विशाल संघ बन चुका था। बामसेफ ने कांशीराम का आर्थिक आधार मजबूत किया। इससे उत्साहित होकर उन्होंने 1981 में अपने राजनीतिक कार्यक्रम को लागू करने के उद्देश्य से डी०एस०–4 अर्थात 'दलित शोषित समाज संघर्ष समिति' का गठन किया। इसी संगठन से उन्होंने हरियाणा में 1982 में विधान सभा चुनाव में अपने प्रत्याशी खड़े किए। इस चुनाव में उसे 57,588 (1.19 प्रतिशत) वोट मिले। यह एक प्रयोग था, जिसमें वे सफल हुए। इसके दो साल बाद 1984 में उन्होंने बाकायदा नई राजनीतिक पार्टी 'बहुजन समाज पार्टी' (बसपा) बनाई।

कांशीराम ने 1988 में बसपा की ओर से सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति के आंदोलन चलाए। इनमें स्वाभिमान आंदोलन, किसान मजदूर आंदोलन, सफाई मजदूर आंदोलन, दस्तकार आंदोलन, शरणार्थी और भागीदारी आंदोलन मुख्य थे।

कांशीराम ने पूना पैक्ट के 50 वर्ष पूरे होने पर, 24 सितम्बर, 1982 से अपने राजनीतिक अभियान की शुरूआत की थी। इस वर्ष देश के चारों कोनों से पूना पैक्ट धिक्कार रैल निकाली गई, जो पूना में जाकर समाप्त हुई। इस रैली ने दलित वर्गों में ब्राह्मणवाद के खिलाफ उस चेतना को उभार दिया, जिसे समय और तात्कालिक राजनीतिक दबावों ने दबा दिया था। 50 साल पहले जो पैक्ट गाँधी और अम्बेडकर के बीच हुआ था, ऐतिहासिक दृष्टि से उस पर राजनीतिक बहस हमेशा हो सकती है, पर लोकतंत्र में उसे नकारने का कोई अर्थ नहीं है। अब कोई दूसरा पैक्ट हो नहीं सकता था और न पृथक निर्वाचन की पद्धति की मांग करने का कोई औचित्य था। पर कांशीराम इसके माध्यम से घोर दलितवाद उभारना चाहते थे, जो सीधे–सीधे कांग्रेस के खिलाफ हो। उनका मकसद कांग्रेस के खिलाफ दलित वर्गों में गुस्सा उतारना था, जिससे कांग्रेस का दलित वोट बैंक खत्म हो सके। उनका राजनीतिक लक्ष्य कांग्रेस को कमजोर कर रिपब्लिकन पार्टी का विकल्प खड़ा करना था।

महाराष्ट्र के दलित वर्गों ने कांशीराम को स्वीकार नहीं किया। पर उत्तर प्रदेश में

[*] *शोध छात्र, राजनीतिक विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ*

[**] *शोध छात्र, राजनीतिक विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ*

उन्हें सफलता मिल गई। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जनपदों में सामंती समाज व्यवस्था मौजूद होने की वजह से कांशीराम के दलित आंदोलन ने पीड़ित दलित वर्गों में आसानी से अपनी जगह बना ली। इधर रिपब्लिकन पार्टी के पतन के बाद आए राजनीतिक शून्य को बसपा ने भर दिया। सामाजिक और राजनीतिक दोनों आंदोलनों की जमीन पहले से तैयार थी। दलित वर्ग के लोग न नीला झण्डा भूले थे और न हाथी के निशान को। बसपा ने इसी का लाभ उठाते हुए न सिर्फ पार्टी के झण्डे का रंग नीला रखा, बल्कि निशान भी हाथी रखा।

कांशीराम ने अपने राजनीतिक आंदोलन को तीन सिद्धांतों पर विकसित किया। पहला जातीय सम्मान, दूसरा भागीदारी और तीसरा वोट को लुटने और बिकने से बचाना। जाति उन्मूलन को उन्होंने अपना ध्येय नहीं बनाया, वरन् जाति के उभार को अपनी राजनीति के केन्द्र में रखा। सामाजिक परिवर्तन और नवजागरण के जन नायकों को उन्होंने जातीय सम्मान और स्वाभिमान आंदोलन से जोड़ने की मुहिम चलाई। शाहूजी महाराज, महात्मा ज्योतिबा फुले, नारायण स्वामी, पेरियार रामास्वामी नायकर, डॉ० अम्बेडकर, भगवान बुद्ध, कबीर, रैदास, झलकारी बाई, बिजली पासी, सावित्री बाई फुले इत्यादि विभूतियों को उन्होंने दलित वर्गों का नायक बना दिया। इसका सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि नवजागरण के ये महानायक, जो राष्ट्रीय चिंतन में हाशिए पर थे मुख्य धारा में आ गए। इन पर व्यापक चर्चा होने लगी। जिन्हें दलित वर्गों में भी ठीक से नहीं जाना जाता था, उन्हें भारी जनता जान रही थी। यह दलित वर्गों के उदय का इतिहास संधान भी था और इतिहास का निर्माण भी। पर इसका नकारात्मक पक्ष यह रहा कि इसे जाति की बुनियाद पर विकसित किया गया। इसलिए इस संधान और निर्माण ने नायकों का जातीयकरण करने के सिवाय परिवर्तन की कोई क्रांतिकारी भूमिका नहीं निभाई।

भागीदारी आंदोलन के तहत कांशीराम ने नारा दिया – वोट हमारा राज तुम्हारा – नहीं चलेगा, नहीं चलेगा। यह कांग्रेस के लिए चेतावनी थी। कांग्रेस दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों के वोट पर राज करती थी। इस वोट बैंक को कांग्रेस से अलग करने के लिए उन्होंने भागीदारी का सवाल उठाया। उन्होंने यह समझाया कि बहुजन समाज की संख्या 85 प्रतिशत है, पर 15 प्रतिशत अल्प आबादी वाला सवर्ण वर्ग उस पर राज कर रहा है। उन्होंने 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उतनी उसकी भागीदारी' का तर्क देते हुए आबादी के अनुपात से बहुजन समाज की भागीदारी की मांग की। पिछड़ी जातियों के लिए मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की मांग को भी उन्होंने अपने आंदोलन में शामिल किया और रैलियाँ की, जिसे लागू करने का श्रेय 1990 में विश्वास प्रताप सिंह को मिला।

भागीदारी आंदोलन ने एक तरह से जातीय तुष्टिकरण की राजनीति विकसित की। यह नई तरह की जातीय जागरण था, जिसने दलित जातियों में जातीय ध्रुवीकरण की चेतना पैदा की। इस क्रम में कांशीराम ने चमार जाति को छोड़कर, चूँकि उसका ध्रुवीकरण हो चुका था, पासी, वाल्मीकी, धोबी, कोरी आदि अन्य जातियों के अलग–अलग सम्मेलन किए।

तीसरे सिद्धांत के तहत कांशीराम ने दलित वर्गों को वोट की कीमत का बोध कराया। उन्होंने कहा कि लोकतंत्र में वोटों की ताकत से शासक पैदा होता है। उन्होंने कहा कि दलित वर्ग इसलिए शासक नहीं बन सका, क्योंकि उसने अपने वोट की ताकत को नहीं पहचाना। उसने उसका सही इस्तेमाल नहीं किया। उसका वोट खरीदा जाता रहा और लूटा जाता रहा। उन्होंने बताया कि कांग्रेस का लंबा राज दलित वर्ग के वोट पर ही चलता रहा है। उन्होंने यह एहसास पैदा किया कि यदि दलित वर्ग को शासक वर्ग बनना है, तो उसे अपने वोट को न लुटने देना है, न बेचना है। उसे उसका उपयोग बहुजन समाज पार्टी के उम्मीदवारों को देकर अपनी ताकत बनाना है।

90 का दशक आरंभ हो गया था। कांशीराम के राजनीतिक आंदोलन ने उत्तर प्रदेश के दलित वर्गों ने नया उत्साह भर दिया था। सत्ता परिवर्तन से बसपा की रैलियों को अभूतपूर्व सफलता मिल रही थी। दलित वर्गों का इतना विशाल ध्रुवीकरण इससे पहले नहीं देखा गया। बामसेफ के समय से कांशीराम के सहयोगी राजबहादुर, दीनानाथ भास्कर, आर०के० चौधरी और मायावती लोकप्रिय नेता बन चुके थे। 1993 में कांशीराम ने समाजवादी पार्टी के मुखिया मुलायम सिंह यादव से राजनीतिक गठबंधन किया और उसी वर्ष के विधान सभा चुनाव सपा–बसपा ने मिल कर लड़े। इस संघर्ष को दूसरी आजादी की लड़ाई का नाम दिया गया। इस लड़ाई में सपा–बसपा गठबंधन को आश्चर्यजनक सफलता मिली। पर अनेक ग्रामीण अंचलों में इस चुनाव में दलितों पर अत्याचार हुए और वोट देने की कीमत उन्हें जान देकर चुकानी पड़ी।

1993 में सपा–बसपा गठबंधन की उत्तर प्रदेश में पहली सरकार बनी और मुलायम सिंह यादव उसके मुख्यमंत्री बने।

जातीय समाजशास्त्र में उच्च जातियाँ कभी भी अपने विशेषाधिकार खोना नहीं चाहेंगी। इसलिए राजनीति में दलित जातियों के उभार ने उच्च जातियों को ध्रुवीकृत होने का अवसर दिया। इस समाजशास्त्र को तभी तोड़ा जा सकता है, जब सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक क्रांति वर्गीय चेतना के आधार पर हो।

कांशीराम ने बसपा का विकास जाति के उभार, जातीय अस्मिता और जाति की राजनीति पर किया। इस राजनीति का लक्ष्य था, कांग्रेस को कमजोर करना, जिसमें बसपा को सफलता मिली। पर इससे कट्टरवादी ताकतों को जो मजबूती मिली, उससे यह कहा जा सकता है कि भाजपा के लिए बसपा का उदय वरदान बन गया। यह एक ऐसी गुत्थी थी, जो दलित आंदोलन के चिंतक वर्ग में विशेष चिंत पैदा कर रही थी। यह उनके लिए उलझन–भरी गुत्थी थी। वह यह तो चाहता था कि दलित राजनीति कांग्रेस की पिछलग्गू न बने, वरन् अपनी पृथक ताकत विकसित करे। पर यह उसे पसंद नहीं था कि वह भाजपा जैसी सांप्रदायिक पार्टी की मजबूती का कारण बने।

लेकिन यह गुत्थी धीरे–धीरे सुलझती गई। जैसे–जैसे कांशीराम और मायावती की राजनीतिक गतिविधियाँ बढ़ती गई, वैसे–वैसे यह स्पष्ट होता गया कि उनका राजनीतिक

मकसद कांग्रेस को कमजोर करने का नहीं, वरन् ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद के खिलाफ दलित आंदोलन के मूल संघर्ष को खत्म करना था।

सरकार बनने के बाद से ही सपा–बसपा गठबंधन को तोड़ने की कोशिशें शुरू हो गई थीं। भाजपा ने मायावती को मुख्यमंत्री बनाने का लोभ देकर सत्ता का सूत्र अपने हाथों में रखने में सफलता हासिल कर ली। 1993 से मई 1995 तक कांशीराम और मायावती ने मुलायम सिंह यादव और उनकी सरकार के प्रति अनर्गल टिप्पणियाँ करके राजनीतिक तनाव पैदा कर दिया था। परिणामतः गठबंधन टूटा और जून 1995 में मायावती भाजपा के समर्थन से मुख्यमंत्री बन गई। अब कांशीराम और मायावती का राजनीतिक खेल पूरी तरह खुल कर सामने आ गया था। 1932 में पूना पैक्ट ने जो भूमिका निभाई थी, वही भूमिका बसपा और भाजपा के पैक्ट ने 1995 में ब्राह्मणवाद के डूबते जहाज को ऊपर लाने में निभाई।

1995 के बाद अब तक इन दस सालों में कांशीराम और मायावती ने हर राजनीतिक कदम भजपा की नीतियों के समर्थन में उठाया कहीं मौन रहकर और कहीं बोलकर उन्होंने भाजपा का पक्ष लिया। वे संविधान समीक्षा के मुद्दे पर मौन रहे और गुजरात में हुए नरसंहार का समर्थन किया। मायावती गुजरात में नरसंहार के बाद हुए चुनावों में भाजपा के लिए वोट माँगने गई। दूसरी बार 1997 में और तीसरी बार 2002 में मायावती के सहयोग और समर्थन से ही मुख्यमंत्री बनीं। उनके पास अपना न कोई राजनीतिक कार्यक्रम था और न आर्थिक दर्षन–सिवाय मनुवाद–मनुवाद चिल्लाकर जातीय संघर्ष का वातावरण पैदा करने के। इसलिए उन्होंने भाजपा के एजेंडे को ही पूरी तरह लागू किया।

2007 में मायावती ने अपने सोशल इंजीनियरिंग फॉर्मूले के अन्तर्गत जातीय समीकरण के आधार पर उत्तर प्रदेश में बहुमत प्राप्त कर सभी राजनीतिक दलों को चौंका दिया यद्यपि इससे दलित राजनीतिक चेतना को एक नई दिशा प्राप्त हुई। तथापि धीरे–धीरे दलित समस्याओं से जुड़े मुद्दे को सशक्त रूप में उठाने की उनकी इच्छाशक्ति कमजोर पड़ती चली गई। अभी हाल ही में वाम मोर्च द्वारा यू.पी.ए. सरकार से समर्थन वापस लेने पर उत्पन्न हुई राजनीतिक परिस्थितियों में मायावती का नाम प्रधानमंत्री पद की दावेदारी के रूप में उभरकर सामने आया। यद्यपि यदि मायावती प्रधानमंत्री बन जाती तो एक दृष्टि से देंखे यह भारतीय दलित राजनीति में एक विशिष्ट उपलब्धि होती तथापि विचारणीय बिन्दू यह भी है कि बचे हुए अल्प समय में तथा विभिन्न विचारधाराओं वाली विभिन्न पार्टियों का नेतृत्व करते हुए मायावती दलितों से जुड़ी समस्याओं व मुद्दों को कहाँ तक हल कर पाती वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि मायावती स्वयं का एक इतिहास स्थापित करना चाहती है जिसके लिए वह दलित राजनीति के मुद्दे पर समझौता करने को भी तत्पर दिखाई देती हैं। इसी संदर्भ में यह प्रश्न बहुत गंभीर हो गया है कि दलित चेतना का जातीय चरित्र क्या है? दलित चेतना क्या वस्तुतः एक जातिवादी चेतना ही है जिसमें हिन्दू वर्ण व्यवस्था की निचली पायदान पर खड़ी जातियों का राजनीतिक गठबंधन तैयार हो जाए और वह मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था में निचली जातियों की संख्यात्मक शक्ति के आधार पर राजनीतिक, आर्थिक सत्ता तक पहुँचने की कोशिश करे? लेकिन इस चेतना का सबसे बड़ा खतरा यह है कि यह स्वयं दलित जातियों के बीच

राजनीतिक वर्चस्व का संघर्ष तेज कर देती है और यह संघर्ष परोक्ष रूप से तो गैर–दलित जातियों के राजनीतिक वर्चस्व के विरूद्ध दिखाई दे सकता है, लेकिन प्रत्यक्षतः यह किसी दलित जाति के विरोध में होता है। इस स्थिति में दलित जातियों के अपने–अपने जातीय आग्रह और तेज हो जाते हैं। जब उनके अपने जातीय आग्रह तेज हो जाते हैं, तो उसके साथ ही वे सब सांस्कृतिक रूढ़ियां, परम्पराएं, कर्मकाण्ड आदि भी मजबूत हो जाते हैं जिनके आधार पर उस जातीय चेतना का निर्माण हुआ होता है। पिछले एक दशक में दलित चेतना के जातिवादी स्वरूप ने यह दिखाया है कि जातिगत गोलबंदी के आधार पर सत्ता तक थोड़ी–बहुत पैठ तो बनाई जा सकती है, लेकिन व्यापक दलित समाज के लिए इसका कोई दूरगामी इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। इसका दूसरा परिणाम यह है कि जब राजनीतिक सत्ता के लिए दलित जातियाँ गोलबंद होना शुरू करती हैं या अपनी सौदाकारी क्षमता का विस्तार करती हैं, तो तत्काल ही गैर–दलित जातियों की राजनीतिक गोलबंदी शुरू हो जाती है और वे दलित जातियों की गोलबंदी को तोड़ने के लिए या तो प्रलोभन का सहारा लेती है या फिर प्रतिकार का। मायावती के प्रकरण से इस स्थिति को समझा जा सकता है।

दलित चेतना निचली जातियों की जातिवादी चेतना नहीं हो सकती। दलित चेतना को हर स्तर पर जातिविहीनता की ही चेतना बने रहना होगा। वह निचली जातियों की राजनीति गोलबंदी की बात तो करें, लेकिन साथ ही साथ ये जातियाँ उन जातीय आग्रहों से मुक्त भी हों जो एक जातिविहीन समाज की संरचना में बाधा बन जाते हैं। मौजूदा दलित राजनीतिक नेतृत्व इस समस्या का हल खोजने में सफल नहीं हुआ है। यह स्थिति यहां तक है कि रजनी कोठारी और डॉ० धीरूभाई शेठ जैसे समाजशास्त्री यह मानते हैं कि जातियां नष्ट नहीं हो सकती बल्कि राजनीतिक–आर्थिक शक्ति के साथ उनका समस्तर विकास होगा। इसका मतलब यह कि निचली जातियां आर्थिक–राजनीतिक वर्चस्व के कारण ऊर्ध्वगामी होगी और गैर–दलित जातियों के साथ बराबर की हैसियत कायम कर लेगी और ऐसा होने के साथ, शायद यह माना गया है कि जातीय नफरत, शोषण और दमन समप्त हो जाएंगे। लेकिन यह परिकल्पना लगभग वैसी ही है जैसी कि वामपंथी सोच की थी कि वर्गीय चेतना के विकास के साथ जातिवादी चेतना नष्ट हो जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसलिए भारतीय समाज को जातिविहीन करने का एजेण्डा न तो छोड़ा जाना चाहिए और न इसे गौण बनाया जाना चाहिए। इस अर्थ में दलित चेतना जातिविहीन समाज की ही चेतना होनी चाहिए न कि निचली जातियों की राजनीतिक गोलबंदी की चेतना।

समाज सुधार आन्दोलन की दृष्टि से दलित चेतना के उदय के साथ ही महिला चेतना का उभार भी एक महत्वपूर्ण पक्ष लेकर हमारे सामने आता है। भारतीय महिलाओं के लिए मुक्ति संघर्ष का अर्थ पश्चिम से बिल्कुल भिन्न रहा है। हाँ, अब भी हमारे सामने केवल प्राप्त संवैधानिक अधिकारों के व्यवहारिक उपयोग का प्रश्न अवश्य है, जिसके लिए आम स्त्रियों में व्यापक शिक्षा और जागृति लाने की जरूरत है। पुरूष वर्ग हमारे लिए प्रतिद्वन्द्वी न पहले कभी रहा, न आज है। उसकी भूमिका अधिकतर सहयोगी की ओर मार्गदर्शन की ही रही है। स्त्री जागरण का प्रश्न हो या स्त्री अधिकारों का या राष्ट्रीय कार्यों में सहयोग का पुरूषों ने आगे

बढ़कर स्त्रियों का आह्वान किया है और दोनों साथ–साथ सहकर्मी की–सी भूमिका निभाते आ रहे हैं।

आजादी की लड़ाई में स्त्री–पुरूष की साझी भूमिका इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। नई स्थितियों में समय–समय पर स्त्रियों की ओर से भी असंतोष की आवाज उठी है, जिसका परिवर्तन की आकांक्षा से रचनात्मक समाधान के लिए स्त्री–पुरूष सभी ने स्वागत किया है।

जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रभाव और उनमें भाग लेने का प्रश्न है, यहाँ भी हमारी स्थिति बहुत स्पष्ट है। स्त्री के मानवीय अधिकारों की प्राप्ति की लड़ाई में, विश्वशांति के पक्ष में, समाज में समान भागीदारी के लिए और विकास व निर्माण कार्यों में योगदान के अधिकारों के लिए उठाई जाने वाली आवाजों में भारतीय महिलाओं की आवाज भी बराबर शामिल है– संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रतिनिधित्व के रूप में उसके माध्यम से भी और महिला संगठन को परस्पर सहयोगी भूमिका के रूप में भी। किन्तु पुरूषों से प्रतिरोध की भावना से प्रेरित या हर उचित–अनुचित तरीके से उसके समक्ष आने के लिए किए जाने वाली अतिवादी तथा कथित नारी मुक्ति आंदोलनों के साथ हमारे स्वर का कभी मेल नहीं बैठा। न भारतीय महिलाओं ने उस तरह के आंदोलनों का कभी समर्थन किया नहीं भारत कीक सांस्कृतिक भूमि में ऐसे आंदोलनों में ऐसे आंदोलनों के पनपने की कोई गुंजाइश ही है। कुछ छुटपुट प्रयत्न हुए भी तो उनका नोटिस नहीं लिया गया, इसीलिए वे लगभग जन्मते ही दफन हो गए।

हमारे यहाँ महिला दिवस भी संघर्ष दिवस न होकर प्रेरणा दिवस के रूप में मनाया जाता है। सरोजिनी नायडू का जन्मदिन 13 फरवरी इसके लिए अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की ओर से चुना गया था। दक्षिण भारत में कहीं–कहीं परम्परानुसार कित्तुर की रानी चेनम्मा का जन्म दिवस 23 अक्टूबर भी महिला दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है।

दलित चेतना के लिए सुझावः–

संविधानेत्तर काल के पाँच दशक का अनुभव इस बात का द्योतक है कि संविधान निर्माताओं का भारत को वर्गविहीन, जातिविहीन एवं समता पर आधारित समाज का सपना साकार नहीं हो सका है। यहाँ वर्ण एवं जाति की जड़ें इतनी गहरी जा चुकी हैं कि सोपानात्मक जाति व्यवस्था के कारण दलितों के प्रति विभेदीकरण एवं असहिष्णुता समाप्त नहीं हो सकती है। सवर्णों का अनार्जित सम्मान एवं दलितों का जन्मजात अभिशाप किसी न किसी रूप में बरकरार है। दुःख की बात यह है कि सभ्यता और संस्कृति के अनवरत विकास औद्योगीकरण, वैज्ञानिक उपलब्धियों और सतत प्रगति के बावजूद भारत में दलित अत्याचार एवं षोशण जारी हैं।

सरकार एवं नीति–निर्माताओं के लिएः–

1. दलित जातियों के विकास से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों का उचित क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए। इन नीतियों एवं कार्यक्रमों में ढिलाई बरतने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कठोर सजा का प्रावधान किया जाए। इन जातियों के सम्पूर्ण विकास में आ रही बाधाओं का व्यापक सर्वेक्षण करवाकर एक समयबद्ध कार्ययोजना तैयार की जाए।

2. दलितों के लिए शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाए। शत–प्रतिशत अभिजनों का यही मानना है कि शिक्षा ही एकमात्र कारक है जिससे इन जातियों का विकास संभव है। अतः इन जातियों के प्रत्येक बच्चे के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करके निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करवाई जाए। समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित छात्रावासों में दलित वर्ग के बच्चों को स्नातकोत्तर, मैडिकल एवं तकनीकी शिक्षा पूर्ण करने तक रखा जाए जिससे निर्धन परिवारों के बच्चे भी व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर सकें।

3. दलितों पर अत्याचार करने वाले लोगों को कड़ी से कड़ी सजा दी जाए एवं ऐसे व्यक्तियों का सामाजिक तिरस्कार किया जाए। यदि अपराधी सरकारी या प्राईवेट सेवा में है तो सेवा से निष्कासित कर दिया जाए। अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार (निवारण) अधिनियम को और अधिक प्रभावी तथा विशेष न्यायालयों को और अधिक सक्षम बनाया जाए।

4. दलितों के लिए आरक्षण को जारी रखा जाए। विशेष भर्ती अभियान चलाकर इन जातियों के लिए आरक्षित स्थानों को इन्हीं जातियों के प्रत्याशियों से भरा जाए। आरक्षण लाभार्थियों का समय–समय पर परीक्षण किया जाए जिससे उनमें अनुचित आरक्षण लाभ की मानसिकता न पनपने पाए और उसके सही उपयोग के प्रति जागरूकता बनी रहे। उपयुक्त उम्मीदवार नहीं मिलने की स्थिति में आरक्षित पदों को अनारक्षित नहीं किया जाए।

5. दलितों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए विशेष प्रयास किये जाएँ। इन वर्गों के सदस्य जो बड़े पैमाने पर उद्योग–धंधे लगाना चाहते हैं उनको योजना लागत की राशि एवं गारंटी की राशि वहन करनी पड़ती है। इसकी शत– प्रतिशत पूर्ति सरकार द्वारा की जाए ताकि दलित वर्ग के लोग भी बड़े पैमाने पर उद्योग लगाकर आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कर सकें। सरकार इन जातियों को लघु उद्योग लगाने के लिए ब्याज–मुक्त ऋण उपलब्ध करवाये।

6. इन जातियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है लेकिन दलित वर्ग के अधिकांश परिवारों के पास कृषि योग्य भूमि नहीं है। अतः इन जातियों को पर्याप्त भूमि आवंटित की जाए। जब तक ये जातियां स्वयं की जमीन की मालिक नहीं होंगी, स्वतंत्र होते हुए भी दासता से जकड़ी रहेंगी। इन वर्गों को प्रभुत्वशाली जातियों द्वारा दबाई गई भूमि पुनः दिलवाई जाए।

7. अनुसूचित जाति विकास निगम एवं इन जातियों के कल्याण से संबंधित अन्य विभागों में दलित आई०ए०एस० अधिकारी ही नियुक्त किये जाएँ।

8. अनुसूचित जाति/जनजाति राष्ट्रीय आयोग को और अधिक शक्तिशाली बनाया जाए। आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन एवं दिये गये सुझावों को तत्परता से लागू किया जाए।

9. दलितों के कर्मचारियों के लिए सेवाकाल में प्रशिक्षण व्यवस्था की जाए जिससे इनमें हीनभावना का विकास न होने पाये एवं किसी को उनकी क्षमता या योग्यता पर अंगुली उठाने का मौका न मिले।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.शांताकुमारी, आर० : शिड्यूल्ड कास्ट एंड वेलफेयर मीजर्स, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, न्यू देहली, 1983

2.सरकार, सुमित : आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन आंठवी आवृत्ति : हरिजन आन्दोलन, 1885–1947

3.प्रभु, पी०एन० : 'हिन्दू सोशल ऑर्गेनाइजेशन', पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1963

4.मलिक, सुनीला : 'सोशियल इन्टीग्रेशन ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट', अभिनव पब्लिकेशन्स, न्यू देहली, 1979

5.ब्रिग, जी०डब्ल्यू : 'द चामर', ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1920

6.बर्थवाल, चन्द्रप्रकाश पांडे, रामनिवास : 'आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण', उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, लखनऊ

7. श्रीवास्तव, एस०एन० : 'हरिजन इन इंडियन सोसायटी', द एयर इंडिया पब्लिशिंग हाऊस प्रा०लि०, लखनऊ, 1980

8. सिंह, आर०पी० : 'अनुसूचित जाति के विधानमण्डलीय अभिजन', मित्तल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1989

9. जाटव, डी०आर० : 'डॉ० अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व', समता साहित्य सदन, जयपुर, 1991

10. मेहता, चेतन : 'युगदृष्टा डॉ० भीमराव अम्बेडकर', मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 1991

11. कीर, धनन्जय : 'डॉ० अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन', पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1954

12. मजूमदार, डी०एन० : 'रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया', पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1958

13. सिंह, भवानी : 'काउंसिल ऑफ स्टेटस इन इंडिया', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1973

14. सागर, एस०एल० : 'हिन्दू संस्कृति में वर्ण व्यवसथा और जातिवाद', बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनऊ

नेहरू शैक्षिक विचारधारा की वर्तमान परिस्थितियों में आवश्यकता

6

भूपेन्द्र सिंह*
डा0 रविकान्त सरल**

पंडित नेहरू चाहते थे कि राष्ट्र और इसके लोग जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति करें और भारत विश्व राजनीति में एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त करे। वे आधुनिक दृष्टिकोण के व्यक्ति थे। उनके विचारों में पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव था। एक बहुमुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की तरह उन्होंने राष्ट्र के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक चिन्तक के रूप में कार्य किया। उन्होंने प्रजातन्त्र, धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रीय चरित्र, नैतिक मूल्यों, बच्चों और स्त्रियों की शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा और व्यवसायिक शिक्षा पर अपने विचार प्रकट किये। वह चाहते थे कि लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता विकसित हो। नेहरू जी ने समझ लिया था कि आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के आधार पर ही भारत प्रगति कर सकता है। आज व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को इस दर्शन की अति आवश्यकता है।

शिक्षा किसी भी समाज की आधारशिला होती है। प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति उसकी शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करती है। जिस राष्ट्र में जैसी शिक्षा व्यवस्था होगी वैसे ही वह राष्ट्र तथा उसके नागरिक होंगे। सौभाग्यवश भारतीय ऋषियों, समाज सुधारकों ने समय–समय पर अपने देश की शिक्षा के लिए बहुत कुछ किया, परन्तु यह निर्विवाद तथ्य है कि भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली अंग्रेजों द्वारा आरोपित एक विदेशी शिक्षा प्रणाली है। यूरोप के व्यापारियों के साथ–साथ अनेक ईसाई पादरी भी भारत आये। अपने धर्म प्रचार हेतु उन्हें शिक्षा का सहारा लेना पड़ा। उन्होंने जगह–जगह मिशन स्कूलों की स्थापना की, जिनमें भारतीय भाषाओं के द्वारा इसाई धर्म की शिक्षा दी जाती थी। मैकाले के द्वारा भारतीय शिक्षा का विदेशीकरण किया गया और सरकारी नौकरियां मात्र उन हिन्दुओं को मिलती थीं जिन्होंने इसाई धर्म अपना लिया हो। इनके द्वारा बड़े स्तर पर भारतीयों का ईसाईकरण किया गया तथा भारतीय प्रणाली को उन्मूलित कर विदेशी शिक्षा प्रणाली को अपनाया गया।

यही प्रणाली स्वतन्त्र भारत में अभी तक प्रचलित है। आज इस बात की आवश्यकता है कि यदि हम वास्तविक अर्थों में भारतीय नागरिक चाहते हैं तो प्रचलित शिक्षा प्रणाली का संरक्षण करके उनका अन्मूलन करना होगा। तथा उसके स्थान पर एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को विकसित करना होगा जिसका आधार भारतीय संस्कृति हों। यदि भावी नागरिकों में भारतीयता तथा राष्ट्रीयता के गुणों को विकसित करना है तो वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करना होगा। आज चारों दिशाओं से भारतीय चिन्तक व शिक्षाविद् शिक्षा के भारतीयकरण की मांग

* *शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र) मेवाड़ विश्वविद्यालय, चित्तौड़गढ़, राजस्थान।*

** *प्राचार्य अमरीश शर्मा कॉलेज ऑफ एजूकेशन एण्ड टैक्नोलॉजी, हापुड़ रोड, मेरठ।*